International Journal of All Research Education and Scientific Methods (IJARESM),
ISSN: 2455-6211, Volume 13, Issue 5, May-2025, Available online at: www.ijaresm.com

वैदिक ज्योतिष एवं मानव स्वास्थ्य- एक अनुशीलन

डॉ. रविन्द्र कुमार गंगवार

---***************--

मानव शरीर और ब्रह्माण्ड की समानता पर पुराणों तथा धर्मग्रन्थों में सम्यक रूप से विचार हुआ है। जो ब्रह्माण्ड में है, वह मानव शरीर में भी है। ब्रह्माण्ड को समझने का श्रेष्ठ साधन मानव शरीर ही है। समाज वैज्ञानिकों ने भी सावययी-सादृश्यता के सिद्धान्त को इसी आधार पर वर्णित करते हुए मानव शरीर व संपूर्ण समाज को एक-दूसरे का प्रतिबिम्ब माना है।शरीर व समाज की समानता को 'सावययी-सादृश्यता' का नाम दिया है। सौरमण्डल को ज्योतिष भली-भाँति जानता है। इसी सौरमण्डल में व्याप्त पञ्चतत्वों को प्रकृति ने मानव निर्माण हेतु पृथ्वी को प्रदान किए हैं। मानव शरीर जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु तथा आकाश अर्थात् इन्हीं पांच तत्वों से निर्मित हुआ है। ज्योतिष ने सौरमण्डल के ग्रहों, राशियों तथा नक्षत्रों में इन तत्वों का साक्षात्कार कर अपने प्राकृतिक सिद्धान्तों का निर्माण किया है।ज्योतिष का फलित भाग इन ग्रहों, नक्षत्रों तथा राशियों के मानव शरीर पर प्रभाव का अध्ययन करता है। जो पञ्चतत्व इन ग्रह-नक्षत्रों व राशियों में हैं, वे ही मानव शरीर में भी हैं, तो निश्चित ही इनका मानव शरीर पर गहरा प्रभाव है। भारतीय ज्योतिष ने सात ग्रहों को प्राथमिकता दी है- रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि। राहु एवं केतु 'छाया ग्रह' हैं। पाश्चात्य ज्योतिष जगत में यूरेनस, नेपच्यून तथा प्लूटो का भी महत्व वर्णित किया गया है।

भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में ज्योतिषशास्त्र को सर्वविद्यामूलक वेद का अंग होने के कारण वेदांग कहा जाता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त छन्द एवं ज्योतिष छह वेदांग माने गए हैं। इन्हीं वेदांगों को शास्त्र भी कहा जाता है।यह शास्त्र हमारे प्राचीन ऋषियों की देन हैं ।कालनियामक होने के कारण इनको कालशास्त्र भी कहा जाता है।सामान्य रूप से ज्योतिषशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के जन्म-जन्मान्तरों से जुड़ा हुआ है।इसलिए ज्ञात-अज्ञात अवस्था में भी निरन्तर हमें ज्योतिषशास्त्र किसी न किसी रूप में प्रभावित करता रहता है। इसलिए इसका दूसरा नाम कालविधानशास्त्र भी है,क्योंकि काल काल का निरूपण भी ज्योतिषशास्त्र के द्वारा ही होता है। काल के प्रभाव के सम्बन्ध में कालाधीनं जगत सर्वम् तथा काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा: कहा गया है। सम्पूर्ण मानव जीवन काल तथा कर्म की अधीन होता है

इसी तथ्य को आचार्य वराहमिहिर ने अपने स्वग्रन्थ लघुजातक में लिखा है कि पूर्वजन्म के कर्मानुसार ही मनुष्य का जन्म, उसकी प्रवृत्तियां तथा उसके भाग्य का निर्माण होता है भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परम्परा में वेद को सर्वविद्या मूलक कहा गया है।उसी वेद के चक्षुरूपी अंग को मनीषियों द्वारा ज्योतिषशास्त्र की संज्ञा प्रदान की गयी है। 1 इसीलिए भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि में ज्योतिष को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ज्योतिष वेद का निर्मल चक्षु है जो अकल्मष अर्थात् दोषरहित है और उसके ज्ञान के अभाव में समस्त वेद प्रतिपाद्य विषय यथा श्रौत स्मार्त यज्ञादि किया की सिद्धि नहीं हो सकती है। 2 सर्वसाधारण को सृष्टि के अनेक चमत्कारों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त होकर उनकी जिज्ञासा पूरी हो सके। इस हेतु देश के अलौकिक बुद्धिमान महान तपस्वी त्रिकालदर्शी महर्षियों ने अपने तपोबल के आधार पर सामान्य जनमानस

के लाभ के लिए जिन शास्त्रों का निर्माण किया है उनमें ज्योतिष साहित्य का स्थान सर्वश्रेष्ठ व प्रथम है क्योंकि सृष्टि के प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति प्रगति व लयादि कालाधीन है और उसे काल का सम्पूर्ण वर्णन तथा शुभाशुभ परिणाम आकाशस्थ ग्रहों के उदय अस्त युति प्रतियुति गति व स्थिति पर निर्भर है।इन्हीं ग्रहों की शुभारम्भ स्थित पर जगत के प्राणी का सुख-दुख हानि-लाभ जीवन-मरण पूर्ण रूप से अवलम्बित है। इस कारण भी ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान मानव के लिए अधिक महत्वपूर्ण माना गया है।ज्योतिष शास्त्र में मूलतः ग्रह नक्षत्र तारा उल्का आदि के विषय में सांगोपांग अध्ययन का वर्णन प्राप्त होता है। इस ब्रह्माण्ड में जो भी चराचर जीव है उन्हें पञ्चमहाभूत, तीनों गुण अर्थात् सत, रज और तम तथा सात प्रकार की धातुएं ग्रह नक्षत्र आदि के प्रभाव से प्रभावित होती रहती है।इनमें से किसी में पार्थिक तत्व अधिक पाया जाता है तो किसी में जल,किसी में अग्नि तत्व, किसी में वायु का अंश अधिक होता है तो कहीं आकाश का भाग अधिक होता है। किसी जातक में सत्वगुणी ग्रहों के प्रभाव से रजोगुण अधिक होता एसो. प्रो. संस्कृत विभाग गन्ना उत्पादक स्नातकोत्तर महाविद्यालय बहेड़ी, बरेली है।

किसी का शरीर मांसल होता है किसी में अस्थि की प्रधानता होती है तो किसी का केशाधिक्य होता है।इन सभी परिस्थितियों का कारण ग्रहयोग वल है।जिस जातक का जैसा प्राक्तन कर्म रहता है,वह उस तरह के ग्रह योग से उत्पन्न होकर जीवन भर क्रमानुसार शुभाशुभ फल का भोग करता रहता है।इन विषयों से सम्बद्ध सिद्धान्तों का ऋषि-महर्षियों ने प्रवर्तन किया।इन्हीं परम्पराओं का कालक्रम में परवर्ती आचार्यों ने पोषण किया और विकास के क्रम में विषय की दृष्टि से ज्योतिषशास्त्र को तीन स्कन्धो सिद्धान्त संहिता और होरा में विभाजित किया गया।

ज्योतिषशास्त्र को सूर्यादि, ग्रहों, तथा नक्षत्रों की गति व स्थिति का बोध कराने वाला चक्षु अर्थात् नेत्र माना गया है। ज्योतिष शास्त्र का क्षेत्र इतना विशालतम है कि एक बात में परिभाषित नहीं किया जा सकता है फिर भी कतिपय विद्वानों ने अलग-अलग रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है। सामान्यतः आकाश में स्थित ग्रहपिण्डों एवं नक्षत्रपिण्डों की गति स्थिति तथा उसके प्रभाव आदि का निरूपण जिस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है उसे ही ज्योतिषशास्त्र कहते हैं अर्थात जिस शास्त्र में सूर्यादि ग्रहों की गति स्थिति से सम्बन्धित समस्त नियम उपनियम एवं उसकी भौतिक पदार्थों के ऊपर पड़ने वाला प्रभाव का वैज्ञानिक विधि से विश्लेषण किया जाए तो उस साहित्य को ही ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है। वेद का अंग होने के कारण उसको वेदांग भी कहा जाता है।

ज्योतिष को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि ग्रहों का गणित जिस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाए उसे ही ज्योतिष कहते हैं। 3 भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में ज्योतिषशास्त्र को सर्वविद्यामूलक वेद का अंग होने के कारण वेदांग कहा जाता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त छन्द एवं ज्योतिष छह वेदांग माने गए हैं। इन्हीं वेदांगों को शास्त्र भी कहा जाता है।यह शास्त्र हमारे प्राचीन ऋषियों की देन हैं ।कालनियामक होने के कारण इनको कालशास्त्र भी कहा जाता है।सामान्य रूप से ज्योतिषशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के जन्म-जन्मान्तरों से जुड़ा हुआ है।इसलिए ज्ञात-अज्ञात अवस्था में भी निरन्तर हमें ज्योतिषशास्त्र किसी न किसी रूप में प्रभावित करता रहता है। इसलिए इसका दूसरा नाम कालविधानशास्त्र भी है,क्योंकि काल काल का निरूपण भी ज्योतिषशास्त्र के द्वारा ही होता है। काल के प्रभाव के सम्बन्ध में कालाधीनं जगत सर्वम् तथा

काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा: कहा गया है। सम्पूर्ण मानव जीवन काल तथा कर्म की अधीन होता है इसी तथ्य को आचार्य वराहमिहिर ने अपने स्वग्रन्थ लघुजातक में लिखा है कि पूर्वजन्म के कर्मानुसार ही मनुष्य का जन्म, उसकी प्रवृत्तियां तथा उसके भाग्य का निर्माण होता है भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परम्परा में वेद को सर्वविद्या मूलक कहा गया है।उसी वेद के चक्षुरूपी अंग को मनीषियों द्वारा ज्योतिषशास्त्र की संज्ञा प्रदान की गयी है। 1 इसीलिए भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि में ज्योतिष को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ज्योतिष वेद का निर्मल चक्षु है जो अकल्मष अर्थात् दोषरहित है और उसके ज्ञान के अभाव में समस्त वेद प्रतिपाद्य विषय यथा श्रौत स्मार्त यज्ञादि किया की सिद्धि नहीं हो सकती है। 2 सर्वसाधारण को सृष्टि के अनेक चमत्कारों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त होकर उनकी जिज्ञासा पूरी हो सके।

इस हेतु देश के अलौकिक बुद्धिमान महान तपस्वी त्रिकालदर्शी महर्षियों ने अपने तपोबल के आधार पर सामान्य जनमानस के लाभ के लिए जिन शास्त्रों का निर्माण किया है उनमें ज्योतिष साहित्य का स्थान सर्वश्रेष्ठ व प्रथम है क्योंकि सृष्टि के प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति प्रगति व लयादि कालाधीन है और उसे काल का सम्पूर्ण वर्णन तथा शुभाशुभ परिणाम आकाशस्थ ग्रहों के उदय अस्त युति प्रतियुति गति व स्थिति पर निर्भर है।इन्हीं ग्रहों की शुभारम्भ स्थित पर जगत के प्राणी का सुख-दुख हानि-लाभ जीवन-मरण पूर्ण रूप से अवलम्बित है। इस कारण भी ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान मानव के लिए अधिक महत्वपूर्ण माना गया है।ज्योतिष शास्त्र में मूलतः ग्रह नक्षत्र तारा उल्का आदि के विषय में सांगोपांग अध्ययन का वर्णन प्राप्त होता है। इस ब्रह्माण्ड में जो भी चराचर जीव है उन्हें पञ्चमहाभूत, तीनों गुण अर्थात् सत, रज और तम तथा सात प्रकार की धातुएं ग्रह नक्षत्र आदि के प्रभाव से प्रभावित होती रहती है।इनमें से किसी में पार्थिक तत्व अधिक पाया जाता है तो किसी में जल,किसी में अग्नि तत्व, किसी में वायु का अंश अधिक होता है तो कहीं आकाश का भाग अधिक होता है। किसी जातक में सत्वगुणी ग्रहों के प्रभाव से रजोगुण अधिक होता है। किसी का शरीर मांसल होता है किसी में अस्थि की प्रधानता होती है तो किसी का केशाधिक्य होता है।इन सभी परिस्थितियों का कारण ग्रहयोग वल है।जिस जातक का जैसा प्राक्तन कर्म रहता है,वह उस तरह के ग्रह योग से उत्पन्न होकर जीवन भर क्रमानुसार शुभाशुभ फल का भोग करता रहता है।इन विषयों से सम्बद्ध सिद्धान्तों का ऋषि-महर्षियों ने प्रवर्तन किया।इन्हीं परम्पराओं का कालक्रम में परवर्ती आचार्यों ने पोषण किया और विकास के क्रम में विषय की दृष्टि से ज्योतिषशास्त्र को तीन स्कन्धो सिद्धान्त संहिता और होरा में विभाजित किया गया।

ज्योतिषशास्त्र को सूर्यादि, ग्रहों, तथा नक्षत्रों की गति व स्थिति का बोध कराने वाला चक्षु अर्थात् नेत्र माना गया है। ज्योतिष शास्त्र का क्षेत्र इतना विशालतम है कि एक बात में परिभाषित नहीं किया जा सकता है फिर भी कतिपय विद्वानों ने अलग-अलग रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है। सामान्यतः आकाश में स्थित ग्रहपिण्डों एवं नक्षत्रपिण्डों की गति स्थिति तथा उसके प्रभाव आदि का निरूपण जिस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है उसे ही ज्योतिषशास्त्र कहते हैं अर्थात जिस शास्त्र में सूर्यादि ग्रहों की गति स्थिति से सम्बन्धित समस्त नियम उपनियम एवं उसकी भौतिक पदार्थों के ऊपर पड़ने वाला प्रभाव का वैज्ञानिक विधि से विश्लेषण किया जाए तो उस साहित्य को ही ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है। वेद का अंग होने के कारण

International Journal of All Research Education and Scientific Methods (IJARESM),
ISSN: 2455-6211, Volume 13, Issue 5, May-2025, Available online at: www.ijaresm.com

उसको वेदांग भी कहा जाता है। ज्योतिष को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि ग्रहों का गणित जिस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाए उसे ही ज्योतिष कहते हैं। 3

मानव जीवन में शरीर के महत्व को बतलाते हुए कहा गया है कि स्वस्थ शरीर के माध्यम से ही व्यक्ति अपने जीवन में परम सुख को प्राप्त करने में सफल होता है।मानव जीवन की समस्त क्रियाओं का सम्पादन पूर्ण स्वस्थ शरीर के माध्यम से ही किया जा सकता है।4

मानव स्वास्थ्य के विषय में आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में उल्लिखित किया गया है कि जिसके तीनों दोष् अर्थात् वात पित्त एवं कफ समान हो, जठराग्नि सम अर्थात् न अधिक तीव्र और ना अधिक मन्द हो एवं शरीर को धारण करने वाले सात धातुएं अर्थात रस रक्त मांस मेद अस्थि मज्जा और वीर्य का अनुपात उचित मात्रा में हो,साथ ही साथ मल-मूत्र की क्रियाएं भली प्रकार संपादित होती हो और दसों इन्द्रियां अर्थात् आंख, कान, नाक, त्वचा, रसना, हाथ, पैर, जिह्वा, गुदा और उपस्थ और मन तथा सब की स्वामिनी आत्मा भी प्रसन्न हो, ऐसे ही व्यक्ति को स्वस्थ कहा जाता है।5

ज्योतिष शास्त्र एवं आयुर्वेद या चिकित्सा विज्ञान का अन्त: सम्बन्ध माना गया है क्योंकि ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान के द्वारा रोगी की दिनचर्या चेष्टा, सर्वांगलक्षण, आकृति एवं उसकी कुण्डली में रोगों के विभिन्न योगों का अध्ययन करके यह जाना जा सकता है कि यह जो रोग है कब तक रहेगा और कितना परेशान करेगा साथ यह रोग कब तक ठीक होगा। चिकित्सा करने वाले चिकित्सक के परामर्श एवं प्रचलित औषधि के द्वारा इस रोग से लाभ होगा या नहीं, इत्यादि ऐसे कुछ प्रश्न है जिनका समाधान आयुर्वेद शास्त्र में नहीं बताया जाता है अपितु ज्योतिषशास्त्र में इनका विस्तार पूर्वक शास्त्रीय रीति से विवेचन किया जाता है। इसलिए प्राचीन काल में ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान की चिकित्साशास्त्र में परम उपयोगिता को ध्यान में रखकर ज्योतिर्वेद्यो निरन्तरों की कहावत प्रचलित हुई होगी।एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि साधारण व्यक्ति भी इस शास्त्र के सम्यक ज्ञान से अनेक रोगों से बच सकता है क्योंकि अधिकांश रोग सूर्य एवं चन्द्रमा के विशेष प्रभाव के कारण उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी गति, स्थिति एवं कलाओं की ह्रास-वृद्वि द्वारा समुद्र के जल में उथल-पुथल मचाता है उसी प्रकार हमारे शरीर के रक्त प्रवाह में स्नायुमण्डल में तथा मनोवृतियों में अपना प्रभाव डालकर जो मनुष्य निर्बल होता है उसे रोगी बना देता है।

इसलिए ज्योतिषशास्त्र के द्वारा चन्द्रमा के तत्व को जानकर अष्टमी अमावस्या एवं पूर्णिमा को वैसे ही तत्व वाले पदार्थों के सेवन पर आत्मनियन्त्रण कर मनुष्य रोगों के आक्रमण से बच सकता है। इस कारण ही स्वास्थ्य का ज्योतिषशास्त्र के साथ सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ होने के कारण मानव स्वास्थ्य में ज्योतिष की महत्वपूर्ण भूमिका मानी गई है। आयुर्वेद में माना गया है की कर्मप्रकोप एवं दोषप्रकोप के कारण रोग को उत्पन होता है।आचार्य कल्हण ने माना है कि अनुचित आहार एवं विहार से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। किन्तु जब व्यक्ति ॠतु के अनुसार आहार एवं विहार करता हो, सद्वृति एवं रोगोत्पत्ति का मौसम भी ना हो तो ऐसी स्थिति में अचानक रोग उत्पन्न हो जाए तो उसे रोग को कर्मजन्य रोग माना जाता है अर्थात् व्यक्ति के पूर्व जन्मों के कारण ही यह रोग उत्पन्न हुआ है यह स्वीकार किया जाता है।6

International Journal of All Research Education and Scientific Methods (IJARESM),
ISSN: 2455-6211, Volume 13, Issue 5, May-2025, Available online at: www.ijaresm.com

परन्तु वास्तविकता तो यह है कि आहार-विहार में भी एक प्रकार का कर्म ही है, जिसके मिथ्यायोग से रोग उत्पन्न होते हैं।प्राचीन शास्त्रों में कर्म के तीन भेद माने गए हैं संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म एवं क्रियमाण कर्म। आयुर्वेद में कर्मजन्य रोगों का कारण जो कर्म माना गया है वह संचित कर्म के अन्तर्गत आता है। जिसके एक भाग को प्रारब्ध दैव कहा गया है एवं जो मिथ्या आहार-विहार आदि हैं वह क्रियामाण कर्म हैं। इस प्रकार कर्मप्रकोप एवं देवप्रकोप को दोनों के मूल में अशुभ एवं अनुक्रम ही एक मात्र कारण दृष्टिगोचर होता है। इसलिए ज्योतिषशास्त्र के अनुसार आचार्यों ने मनुष्य के पूर्वार्जित कर्म या जन्मान्तर में विहित पाप आदि को रोग का प्रमुख कारण माना है।7

परन्तु मानव स्वास्थ्य के सम्बन्ध में ज्योतिषीय आधार पर विचार करें तो हम सभी जानते हैं कि सारा ब्रह्माण्ड पञ्चमहाभूतों से बना हुआ है इन्हीं पञ्च महाभूतों से मानव शरीर की रचना होती है।मानव शरीर में तीन धातुओं कफ, पित्त और वायु का समावेश होता है जिनके असंतुलन से हम रोगग्रस्त और संतुलन से स्वस्थ होते हैं। ज्योतिष शास्त्र में रोग का विचार करने के लिए प्रमुख तीन तत्व प्रधान रूप से माने जाते हैं जो कि ग्रह राशि एवं भाव के रूप में है। इनकी प्रकृति परस्पर स्थित आदि के द्वारा ही ज्योतिषशास्त्र में रोग आदि का विचार किया जाता है। सूर्य, चन्द्रादि ग्रहों का प्रभाव भूमण्डल के सभी जीवो, पेड़-पौधों, वनस्पतियों तथा जड़ और चेतन पदार्थों पर पड़ता है।उसी प्रकार विभिन्न नक्षत्रों और अग्नि, वाय, जल तथा पृथ्वी तत्व राशियों का प्रभाव उनके गुणानुसार समस्त भूमण्डल एवं लोक में पड़ता है। ज्योतिष का उक्त सभी तत्वों से अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है

इस कारण इसके सिद्धान्तों के विश्लेषण से विभिन्न प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगों का पूर्वानुमान एवं उनकी पहचान तथा समय रहते उनके निदान सम्भव हो सकता है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जन्मकुण्डली के षष्ठ भाव को रोग का भाव भी कहा जाता है,इस षष्ठ तथा अष्टम स्थान में ग्रह और इन भावों के अधिपति से रोग का विचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त पाप-प्रभाव-युक्त राशियां एवं भाव नीचे राशि अस्त ग्रह, निर्बल ग्रह, लग्न और लगन का अधिपति ग्रह वक्री ग्रह, मारक ग्रह एवं वालाष्टिक कारक ग्रह भी रोगों के कारक माने गए हैं।इन ग्रहों के शुभाशुभ एवं बलाबल के आधार पर रोग कर रोगी की प्रवृत्ति उसका प्रभाव एवं उसकी अवधि का निर्धारण किया जाता है साथ ही साथ रोग के स्थित के बारे में भी निर्णय किया जाता है।वस्तुत: ग्रह फलाफल नियामक नहीं होते हैं अपितु ग्रह फल के सूचक होते हैं। अतः ग्रह किसी को दुख सुख अथवा दुख नहीं देते अपितु आने वाले सुख अथवा दुख की सूचना देते हैं । यह ग्रह अपनी गति, स्थिति एवं युति के द्वारा व्यक्त करते हैं कि उनकी रश्मियों का प्रभाव के फलस्वरूप किस प्रकार का वातावरण तैयार हो रहा है।

ज्योतिष में माना गया है कि ग्रह रश्मियों का प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर सतत एवं सुनिश्चित रूप से पड़ता है। स्वास्थ्य परिज्ञान के सन्दर्भ में इन तीनों तत्वों को विस्तृत रूप से समझने का प्रयास किया जाए तो निश्चित ही मानव उनके माध्यम से होने वाले रोगों का निर्णय कर सकता है।संक्षिप्त रूप में सूर्यादि नवग्रहों के स्वरूप को रोगज्ञान हेतु समझाने का ज्योतिष में भरसक प्रयास किया गया है। सूर्य- सूर्य अग्नि तत्व प्रधान मध्यम कद वाला ग्रह है। यह पूर्व दिशा का स्वामी, रक्तवर्ण, पित्तप्रकृति और पाप ग्रह माना जाता है। सूर्य आत्मा, स्वभाव, आरोग्यता और पितृकारक है। पिता का विचार भी सूर्य से किया जाता है। यह मानव की अस्थि

(हड्डी) नेत्र,सिर,प्राणशक्ति और मेदा को प्रभावित करता है। यदि किसी की कुण्डली में सूर्य वलवान होता है तो निश्चित रूप से उसकी हड्डियां काफी मजबूत होती है। लेकिन उसके निर्बल होने पर रोगकारक रहने से पित्त प्रकोप, अस्थिरोग, नेत्र रोग एवं हृदयरोग आदि होने की प्रबल सम्भावना रहती है।

चंद्रमा- चन्द्रमा जल तत्व प्रधान तथा दीर्घ कदवाला ग्रह माना जाता है। यह मन एवं माता शारीरिक पुष्टि, सम्पत्ति एवं चतुर्थ स्थान का कारक माना जाता है। चन्द्रमा मनुष्य के वक्ष फेफड़ा मस्तिष्क, उदर, रक्त एवं कफ को प्रभावित करता है। इसके बलशाली होने पर मनुष्य के शरीर में रक्त संचार पर्याप्त रूप से बना रहता है एवं मन भी प्रसन्न रहता है। इसके विपरीत कुण्डली में यह निर्बल हो या रोगकारक हो, तो कफरोग, मूत्र रोग,श, जलोदर, मानसिक रोग, अस्थमा,क्षयरोग और वात रोग होते हैं।

मंगल- मंगल ग्रह की पित्त प्रकृति, रक्त वर्ण एवं अग्नि तत्व है। यह शरीर में कपाल,कान, स्नायु,मज्जा, बल, धैर्य एवं पित्त को प्रभावित करता है। यह भाई एवं बहन का कारक माना जाता है। कुण्डली में इसके बली रहने पर व्यक्ति की अस्थियां मजबूत तथा साहसी तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता होती है। यदि यह कुण्डली में निर्बल रहे,तो रोगकारक रक्तविकार, रक्तचाप, पित्त विकार, महामारी जन्य रोग, दुर्घटना से रोग आदि की सम्भावना बनी रहती है।

बुध- बुध ग्रह पृथ्वी तत्व प्रधान, त्रिदोष प्रकृति, सामान्य कदवाला तथा जलीय ग्रह है। बुध चिकित्सा शास्त्र, शिल्प, कानून, वाणी, चतुर्थ स्थान और दशम स्थान का कारक माना जाता है। मानव शरीर में जिह्वा, श्वासनली,केश,मुख,हाथ एवं त्रिधातु को प्रभावित करता है।जन्म कुण्डली में यदि बुध ग्रह बलवान होता है तो उस व्यक्ति का व्यक्तित्व आकर्षक तथा उसकी प्रतिपादन शैली अच्छी होती है।इसके विपरीत यदि निर्बल है या रोगकारक है, तो मानसिक रोग, वाणीदोष उदरविकार कण्ठरोग, नासिका रोग एवं स्नायु रोग होने की सम्भावना रहती है।

गुरु- गुरु ग्रह पुरुष जाति, स्थूल शरीर वाला, पीत वर्ण एवं कफ प्रवृत्ति वाला होता है।मानव शरीर में यह चर्बी उदर, वीर्य, यकृत, त्रिदोष तथा कफ प्रवृत्ति को प्रभावित करता है।इसके कुण्डली में बली रहने पर मानव सुन्दर शरीर धार्मिक प्रवृत्ति वाला, शान्त मन एवं विचार शक्ति अच्छी होती है। इसके कुण्डली में निर्बल रहने पर उदर रोग, मज्जादोष स्थूलता, यकृत रोग, पीलिया, दन्त रोग, वायु विकार और मस्तिष्क विकार आदि होते हैं।

शुक्र- शुक्र ग्रह स्त्री जाति, श्यामवर्ण, सुन्दर शरीर एवं नेत्र वाला तथा जलतत्व प्रदान होता है।यह मानव शरीर में जननेन्द्रिय, शुक्राणु, नेत्र, कपोल, चिबुक स्वर और गर्भाशय को प्रभावित करता है।इसके बली रहने पर मनुष्य का शरीर सुन्दर, कामशक्ति अधिक और वीर्यवान होता है। इसके विपरीत यदि शुक्र कुण्डली में निर्बल रहता है तो यह रोग का कारक होता है। जिससे कि मूत्र विकार, वीर्य विकार, गुप्त रोग, मादक पदार्थों को सेवन करने की प्रवृत्ति मधुमेह,कफवायु विकार, एवं नेत्र रोग वाला होता है। शनि- शनिग्रह नपुंसक वात-श्लेष्मिक में प्रवृत्ति वाला, कृष्ण वर्ण वाला तथा वायु तत्व प्रधान माना गया है। इसमें हड्डियों के जोड,पैर,घुटने,वात संस्थान और स्नायु मज्जा को प्रभावित करता है।इसके कुण्डली में बली रहने पर

स्नायुतंत्र सुदृढ़ तथा शरीर पुष्ट होता है। इसके अशुभ या निर्बल अथवा रोगकारक होने पर वायु विकार, स्नायु विकार,पागलपन, जोड़ों में दर्द, अस्थमा, सन्धिवात तथा मानसिक विकार होता है। यह मनुष्य में अपराध प्रकृति को जन्म देने के साथ ही साथ आत्महत्या हेतु भी प्रेरित करता है।

राहु- राहु ग्रह कृष्ण वर्ण वाला और क्रूर प्रवृत्ति वाला होता है। यह वायु तत्व प्रधान तथा मध्यम कद वाला होता है। यह शरीर में रक्त, मस्तिष्क त्वचा एवं वात को प्रभावित करता है।इसके बलवान होने पर शरीर तन्दुरुस्त, ताजगी युक्त एवं चैतन्यता से युक्त रहता है। इसके विपरीत निर्बल रहने पर चेचक, कृमी, मिर्गी,और सर्पदंश की सम्भावना रहती है।

केतु - केतु भी कृष्ण वर्ण वाला और क्रूर ग्रह के रूप में माना जाता है।यह भी वायु तत्व प्रधान तथा मध्यम कदवाला होता है। केतु शरीर में वात रक्त तथा चर्म को विशेष रूप से प्रभावित प्राप्त करता है। इसकी कुण्डली में अच्छी स्थिति रहने से श्रम शक्ति, प्रतिरोध शक्ति एवं सक्रियता बनी रहती है। इसके विपरीत यदि कुण्डली में केतु ग्रह की स्थिति अच्छी नहीं रहे तो सुस्ती आलस्य, अकर्मण्यता, चर्म रोग एवं जटिल रोग होते हैं।

ठीक इसी प्रकार द्वादश राशियों का स्वास्थ्य के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि क्रान्ति वृत्ति के बारह भाग,वारह राशियां मेष,वृष, मिथुन, कर्क, सिंह,कन्या,तुला, वृश्चिक,धनु मकर कुम्भ एवं मीन कहलाती है। यह मेषादि राशियां काल पुरुष के शरीर में क्रम से शीर्षादि अवयवों के के रूप में लोक व्यवहार के लिए कल्पित है।जैसे मेष- शिर,वृष-मुख मिथुन-वाहु, कर्क-हृदय,सिंह-उद, कन्या-कटि अर्थात् कमर, तुला-वस्ति (नाभि तथा लिंग का अन्तर्भाग) वृश्चिक-लिंग,धनु-उरुद्वय, मकर-जानुद्वय,कुम्भ जंघाद्वय तथा मीन व पादद्वय के रूप में प्रसिद्ध है। इसका प्रयोजन इस प्रकार से समझा जा सकता है कि जन्म काल में जो अवयव पाप ग्रह से युक्त हो उसके कुछ विकार युक्त तथा जो अवयव शुभ ग्रह से युक्त हो उसे पुष्ट कहना चाहिए।जैसे मेष पाप ग्रह से युक्त हो तो सिर में विकृति तथा शुभ ग्रह से युक्त हो तो सुन्दर कहना चाहिए।8

मानव शरीर में राशियों के अनुसार रोग विषयक विचार किया गया है कि उसमें मेष राशियों से सम्बन्धित रोगों को ज्योतिष शास्त्र में वर्णित करते हुए कहा गया है कि मेष राशि से शरीर के मस्तिष्क, शरीर एवं सिर पर बाल आदि का विचार किया जाता है। इसी प्रकार वृष राशि से आंख,कान,नाक,गाल,औठ, दांत, मुख, जिह्वा एवं गले का विचार किया जाता है।मिथुन राशि से कंठ, ग्रीवा,भुजा, कोहनी, मणिबंध वक्ष एवं स्तन का विचार किया जाता है।कर्क राशि से फेफड़े, श्वासनली एवं हृदय से सम्बन्धित विमर्श किया जाता है।सिंह राशि से उदर,आंतें, हृदय, गुर्दा एवं नाभि का विचार किया जाता है। कन्या राशि से कमर एवं नितम्ब का विचार किया जाता है, तथा तुला राशि से वस्ति मूत्राशय एवं गर्भाशय का ऊपरी भाग का विचार किया जाता है।वृश्चिक राशि से गर्भाशय, जननेन्द्रिय एवं गुदा का विचार किया है। धनु राशि से उरु का विचार एवं मकर राशि से जानु एवं घुटने का विचार किया जाता है। कुम्भ राशि से जंघा और पिण्डली का चिन्तन एवं मीन राशि के माध्यम से पैर,टखन,पादताल एवं पैर की उंगलियों का विचार किया जाता है।

द्वादश भाव के अनुसार रोग विचार-जैसा कि सर्वविदित है कि कुण्डली में 12 भाव माने गए हैं जिनकी संज्ञाएं पृथक-पृथक होती है।जैसे प्रथम भाव की तनु, द्वितीय भाव की धन, तृतीय भाव भाव की सहज, चतुर्थ भाव की सुख,पञ्चम भाव की सुत, षष्ठ भाव की रोग, सप्तम भाव की जाया अर्थात् पत्नी, अष्टम भाव की मृत्यु,नवम भाव की भाग्य अर्थात् धर्म, दशम भाव की कर्म, एकादश भाव की आय अर्थात् लाभ,और द्वादश भाव की व्यय होती है।9

इन द्वादश भाव इन द्वादश भाव की स्थिति के अनुसार सम्पूर्ण फलादेश की प्रक्रिया की जाती है। रोग विचार के क्रम में यदि हम भाव का विचार करें तो उनका महत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है क्योंकि सामान्यतया द्वादश भावों में से रोग का विचार प्रथम भाव या लग्न भाव, षष्ठ भाव अर्थात् रोग भाव, अष्टम भाव अर्थात् मृत्यु भाव और द्वादश भाव व्यय भाव माना जाता है। इसे हेतु स्वास्थ्य सम्बन्धी चिन्तन इन भावों की स्थिति के अनुसार किया जाता है। सामान्यतः लग्न या प्रथम भाव से सम्पूर्ण शरीर के स्वास्थ्य का विचार किया जाता है।इस भाव के अनुसार शरीर की बनावट, रूप रंग, आकृति,शारीरिक सुख आदि का चिन्तन किया जाता है।द्वादश भाव में षष्ठ भाव को रिपु या रोग भाव के नाम से भी जाना जाता है। जिससे शरीर के रोग का विचार किया जाता है क्योंकि मनुष्य का रोग प्रबल शत्रु माना जाता है। इसी कारण इस भाव से मनुष्य के जीवन में होने वाले रोगों का विचार किया जाता है। अष्टम भाव आयु या मृत्यु का कारक माना जाता है क्योंकि आयु और मृत्यु एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं।जब व्यक्ति की आयु पूर्ण हो जाती है तब उसकी मृत्यु हो जाती है।मृत्यु होने के कारण हो सकते हैं किसी दुर्घटना या कोई असाध्य या कभी-कभी आयु पूर्ण होने के कारण भी मृत्यु के कारण में रोग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है यदि कोई असाध्य रोग हो जाता है तो निश्चित ही उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है और यदि आयु है तो बहुत हद तक रोग का उपचार भी हो जाता है। रोगों के ज्ञान में इस भाव की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।इसी क्रम में द्वादश भाव से भी रोगों का विचार किया जाता है क्योंकि द्वादश भाव के व्यय भाव के नाम से जाना जाता है क्योंकि प्रत्येक रोग शारीरिक शक्ति का क्षय करने वाला होता है। सामान्यतः अष्टम भाव से जो अष्टम भाव होता है उससे भी मृत्यु का विचार किया जाता है। साथ ही साथ द्वादश राज चक्र के अनुसार द्वादश भाव के द्वारा भी सम्पूर्ण शरीर के अंगों का विचार किया जाता है अर्थात् प्रथम भाव सर का, द्वितीय भाव मुख का, तृतीय भाव भुजाओं का, चतुर्थ भाव हृदय का, पञ्चम भाव उदर का, षष्ठ भाव कटि अर्थात् कमर का, सप्तम भाव वस्ति का, अष्टम भाव गुप्तांग का,नवम भाव रु का दशम भाव जानु का, एकादश भाव जंघाओं का, एवं द्वादश भाव पैरों का प्रतिनिधित्व करता है। जो भाव अच्छा होता है शरीर का वह अंग पुष्ट माना जाता है ।

ज्योतिष शास्त्र में ग्रह राशि एवं भाव किन परिस्थितियों में रोक के कारक माने गए हैं इसका विचार जन्म कुण्डली की स्थिति के अनुसार किया जा सकता है क्योंकि स्वास्थ्य सम्बन्धी विचार के कई योग, ग्रह, राशि एवं भाव आदि के माध्यम ज्योतिषशास्त्र में बताए गए हैं। ज्योतिषशास्त्र में प्रमुख रूप से रोगों को दो भागों में बांटा गया है जो की शास्त्रान्तरों में निज तथा आगुन्तक के भेद से दो प्रकार के वर्णित किए गए हैं। फिर पुनः निज रोग अर्थात सहजरोग को शारीरिक तथा मानसिक रूप में तथा आगुन्तक रोग के अन्तर्गत दुष्ट निमित्तजन्य अर्थात् जिनके कारण का प्रत्यक्ष पता रहता है।अदृष्ट निमित्तजन्य जिनके कारण का प्रत्यक्ष का पता नहीं लगता है जैसे भूत प्रेत आदि। 10

International Journal of All Research Education and Scientific Methods (IJARESM),
ISSN: 2455-6211, Volume 13, Issue 5, May-2025, Available online at: www.ijaresm.com

1-निज रोग- निज रोग अर्थात् सहज रोग उन्हें कहते हैं जो जन्मजात ही होते हैं अर्थात् जन्म के साथ यह रोग भी शरीर में विद्यमान रहते हैं। यह जन्मजात रोग भी शारीरिक और मानसिक भेद से दो प्रकार के होते हैं।जन्मजात शारीरिक रोगों में लंगड़ापन,अन्धत्व, मूकत्व ,बधिरत्व लूलापन, नपुंसकत्व, किसी अंग विशेषक् का न होना या किसी अंग विशेष का अधिक या बड़ा होना आदि आते हैं। जन्मजात मानसिक रोग, पागलपन, उन्माद, मस्तिष्क विकार,जडता आदि को भी माना गया है इन जन्मजात रोगों का कारण हमारे शास्त्र में पूर्व जन्म के कर्मों के कारण या माता-पिता द्वारा किए गए कर्मों को भी माना जाता है। 11

शारीरिक रोगों के कारण के अनुसार बताते हुए कहा गया है की वात दोष से, पित्र दोष से, कफ दोष से, वात तथा कफ के मिश्रण से,वात पित्त कफ से तीनों दो के मिश्रण तथा से जो रोग उत्पन्न होता है उन्हें शारीरिक रोग कहा जाता है क्योंकि यह शरीर में उत्पन्न दोष विकृति से पैदा होते हैं।ज्योतिषशास्त्र में गर्भाधान कुण्डली एवं जन्म कुण्डली के आधार पर योग का आदि का विचार किया जाता है। इसके अनुसार सहज अर्थात् शारीरिक रोग का मुख्य कारण है कि सारे लोगों का विचार अष्टमेश, अष्टम भाव, अष्टम भाव को देखने वाले ग्रह तथा अष्टम भाव में विद्यमान ग्रह से माना जाता है। इन सभी में से जो बली ग्रह होता है वह उससे सम्बन्धित रोग उत्पन्न करता है।रोग सम्बन्धी विभिन्न युगों में योगों अष्टमेश एवं अष्टम स्थान का सम्बन्ध हो तो उसे कारण जो रोग उत्पन्न होते हैं वह रोग असाध्य होते है। तथा जिनका उपचार के बाद भी रोग की समाप्ति कारणों से नहीं हो पाती। यदि इन रोगों में परस्पर अष्टमेश एवं अष्टम स्थान का सम्बन्ध न हो तो वैसे शारीरिक रोग साध्य होते हैं अर्थात् उपचार के माध्यम से ठीक हो जाते हैं।12

इसी प्रकार सहज मानसिक रोग पर विचार करते हुए कहा गया है कि क्रोध, साध्वस अर्थात् भय,शोक आदि मानसिक वेगों को धारण करने से मानसिक रोग उत्पन्न होते है। इन मनो-रोगों विचार अष्टमेश तथा चतुर्थेश की युदति एवं दृष्टि सम्बन्ध आदि से करनी चाहिए।मानसिक रोगों के जिन योगों में अष्टमेश एवं चतुर्थेश की युति या दृष्टि प्रत्यक्ष प्रतीत हो वह मानसिक रोग प्रायः असाध्य होते हैं अर्थात् उपचार के बाद भी सही नहीं हो पाते हैं। जिन मानसिक रोग के योंगों में अष्टमेश एवं चतुर्थेश की दृष्टिया युति न हो, वह मानसिक रोग होने पर भी उपचार द्वारा ठीक हो जाते हैं।13

2- आगन्तुक रोग - आगन्तुक रोग भी दो प्रकार के होते हैं जो कि दृष्टिनिमित्यजन्य एवं अदृष्टनिमित्तजन्य के रूप में हैं।शाप, अभिचार ,घात,संसर्ग,महामारी एवं दुर्घटना आदि प्रत्यक्ष घटनाओं द्वारा उत्पन्न होने वाले लोगों को दृष्टिनिमित्तजन्य रोग कहते हैं।तथा बाधक ग्रह योगों के द्वारा उत्पन्न रोग अदृष्टनिमित्तजन्य रोग कहलाते हैं।इन रोगों का कारण पूर्वार्जित कर्म माना गया है। उक्त दृष्टिनिमित्तजन्य एवं अदृशष्टनिमित्तजन्य रोगों के भी शारीरिक एवं मानसिक रूप में वर्णित किए गए हैं।

क- दृष्ट निमित्तजन्य- जिनके कारण का पता रहता है इन रोगों के बारे में बताते हुए कहा गया है कि दूसरे के द्वारा दिया गया शाप,अभिचार कर्म अर्थात् मारण,मोहन, उच्चाटन स्तम्भन, विद्वेषण तथा कृत्य आदि के तांत्रिक प्रयोग, अभिघात अर्थात् शस्त्रादि से आक्रमण के आदि से होने वाले रोग दृष्टिनिमित्तजन्य होते हैं। इस प्रकार के रोगों का विचार षष्ठेश, षष्ठभाव,षष्ठारूण, षष्ठदृष्टा अर्थात् छठे भाव बैठा हुआ ग्रह इन चारों से ही किया जाता है।14

ख- अदृष्ट निमित्तजन्य- ऐसे रोग जिनके कारण प्रत्यक्ष रूप से दिखायी नहीं देते हैं।वह रोग अदृष्टनिमित्तजन्य रोग कहलाते हैं। ज्वर अतिसार रोग इन्हीं के अन्तर्गत आते हैं।इन रोगों के विषय में ज्योतिषशास्त्र कहा गया कि पूर्व में कथित जो दृष्टनिमित्तजन्य रोग है,उनमें यदि षष्ठेश तथा अष्टमेश का सम्बन्ध हो तो वह रोग उग्र हो जाया करते हैं।जो अदृष्टनिमित्तजन्य रोग हैं, वह बाधक ग्रहों के कारण उत्पन्न होते हैं और पूर्व जन्म के प्रारब्ध से ही हुआ करते हैं। इसमें अनेक बार चिकित्साकों द्वारा किसी कारण का पता नहीं चल पाता है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र के विभिन्न रोग जन्य योगों के कारण स्वास्थ्य की अनुकूलता आदि का विचार करना पड़ता है। 15

ज्योतिषशास्त्र में स्वास्थ्य विचार की महत्ता- स्वास्थ्य विचार के क्रम में ज्योतिष शास्त्र की उपयोगिता प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि स्वास्थ्य का ज्ञान जन्म-कुण्डली में ग्रहों एवं भावों की स्थिति से ही किया जाता है। किन परिस्थितियों में स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव हो सकता है इसका ज्ञान होने से हम उस प्रतिकूल प्रभाव को कम करके में काम करने में निश्चित ही सफल हो सकते हैं।इस प्रतिकूल प्रभाव या रोग से निवृत या न्यूनता ज्योतिष उपचार पद्धति से ही किया जा सकता है। ज्योतिषशास्त्र के द्वारा रोगों के साध्य या असाध्यता का ज्ञन पूर्वोक्त विधियों के माध्यम से किया जा सकता है।जो रोग साध्य होते हैं वह चिकित्सा आदि से शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं। परन्तु साध्य रोगों को ठीक होने के समय का ज्ञान या रोग विशेष की कालवधि को ग्रहस्थिति, गोचर की स्थिति, रोगारम्भ के नक्षत्र आदि से किया जा सकता है।इसके अतिरिक्त कोई रोग दशा-अन्तर्दशा आदि के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं तो वह दशा आदि की समाप्ति पर स्वत: ही समाप्त हो जाते हैं । ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों के अशुभ प्रभाव से छुटकारा पाने के लिए अनेक उपाय बताए गए हैं। जैसे-रत्नधारण मन्त्र औषधि दान और स्नान का उपयोग बताया गया है। ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थों में ग्रहों की ग्रह-चिकित्सा पर पर्याप्त विकास डाला गया है।साथ ही साथ ग्रहचिकित्सा के प्रमुख उपकरणों का सर्वांगीण एवं ज्योतिषीय आधार भी वर्णित किया गया है,जैसे रत्नविज्ञान, मन्त्रशास्त्र आदि ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव को दूर करने के लिए ज्योतिषशास्त्र में रत्न धारण की परिपाटी प्राचीन प्रचलित है।रत्न धारण के पीछे का विज्ञान से सभी लोग इस बात से परिचित थे कि सौरमण्डलीय वातावरण तथा ग्रह रश्मियों का प्रभाव पाषाणों के रंग-रूप आकार-प्रकार एवं उनके गुण-धर्मों का निरन्तर प्रभावित करता है।16

पूर्व के जन्म में किया हुआ कर्म इस जन्म में रोग के रूप में उत्पन्न होता है उसकी शान्ति औषधि दान,जप,तप, होम, पूजा आदि के द्वारा ही की जा सकती है। 17 एक रोगी के व्यक्ति के रोग को ठीक करने के लिए औषधिदान, पथ्य, अर्थात् हितकार भोजन, विश्राम आदि तैलाभ्यंग अर्थात् औषधि सिद्ध तैलों की मालिश तथा प्रतिश्रय अर्थात् उचित नींद एवं विश्राम की व्यवस्था रोगी की आवश्यकतानुसार दें। सभी प्रकार के रोगों की शान्ति के लिए महामृत्युञ्जय हवन का विधान है सभी हवनों में ब्राहमण भोजन अवश्य करना चाहिए। तीव्र ज्वर एवं अभिचार की शान्ति इसी हवन के द्वारा ही होती है।केवल महामृत्युञ्जय मंत्र के द्वारा किए गए हवन से ही आयुवृद्धि एवं आयु की रक्षा भी होती है। तीव्र ज्वर, तीव्र अभिचार, उन्माद तथा सभी प्रकार के मनोरोंगों मे शरीर में होने वाली जलन की बीमारी में, तथा मूर्छा आदि में महामृत्युञ्जय मन्त्र अर्थात् संजीवनी मन्त्र को यदि (8000) आठ हजार की संख्या में कराया जाए तो शीघ्र ही रोगशान्ति होती है।

ग्रहजन्य दान औषधि मन्त्र एवं रत्न इत्यादि के द्वारा रोग शमन के उपाय किए जाते हैं तो अवश्य ही लाभ प्राप्त होता है।18

विभिन्न ग्रहों की दान-वस्तुएं निम्नवत है

ग्रह- दान वस्तुएं

सूर्य -गेहूँ, गुण, ताम्र, स्वर्ण, रक्तचन्दन, माणिक्य, लालवस्त्र, अलंकार सहित सवत्सा गौ।

चन्द्रमा -मोती, चांदी, स्वेत वस्त्र, बांस के पात्र में चावल, घी से भरा कुम्भ कपूर, वृषभ, दही एवं शंख।

मंगल - गेहूं, गुड, ताम्र, स्वर्ण, लालवस्त्र, रक्त चन्दन,मसूर, गूंगा, रक्तवैल, एवं लाल कनेर के फूल।

बुध - नीला वस्त्र हरापुष्प, कांस्यपात्र, हाथी दांत,सोना दासी, मूंग, घी. भेड़ एवं पन्ना।

गुरु -पीलावस्त्र, शर्करा, चने की दाल, सोना, हल्दी, लवण, पुखराज, घोड़ा एवं पीले रंग का फूल ।

शुक्र -हीरा,घृत, चावल, कपूर, सोना, चित्रविचित्र रंग का कपड़ा, चांदी, गौ, श्वेत, घोड़ा एवं स्वेत पुष्प।

शनि -तेल भैंस, नीलम, उड़द,तिल, कम्बल, कालावस्त्र, कुल्थी, कृष्ण गौ एवं काले फूल।

राहु - लोहा ,तेल,गोमेद घोड़ा तिल, कम्बल, कालावस्त्र, चाँदी, ऊन।

केतु - तेल, वस्त्र,वैदूर्य, कस्तूरी नीलेफूल, तिल, कम्बल, ऊन्, एवं नमक।

ग्रहों के रोग कारक अशुभ प्रभाव को दूर करने के लिए ग्रह जन्य औषधि से स्नान करने का विधान भी बताया जाता है। विभिन्न ग्रहों की औषधियां निम्नलिखित है---

ग्रह - औषधियां

सूर्य-केशर मुलेठी इलायची देवदारु खश कनेर के फूल ।

चन्द्रमा - शंख, सीप, श्वेत चन्दन, पञ्च गन्ध, गजमद, एवं स्फटिक।

मंगल- रक्तपुष्प,सिंगरफ, मालकांगनी,विल्वछाल, रक्त चन्दन,धमनी, मौलसिरी।

बुध- फल,स्वर्ण, मोती एवं गोरोचनएगोबर, मधु, अक्षत।

गुरु - मालीपुष्प, पीली सरसों मुलहटी, मधु एवं मालती।

शुक्र - सुवृक्षमूल एवं केशरए इलायची मैनसिल ।

शनि - लोबान,धमनी, सौंफ, मुत्थराए कालेतिल, सुर्मा, एवं खिल्ला ।

राहु- मुल्थस, हाथी दांत, लोबान, तिलपत्र, एवं कस्तूरी।

केतु- मुत्थरा,हाथी दांत, लोबान, तिलपत्र, एवं कस्तूरी ।

ग्रह सम्बन्धी रत्न-सूर्य की प्रसन्नता के लिए माणिक्य, चन्द्रमा के लिए मोती, मंगल के लिए मूंगा बुद्ध के लिए पन्ना, गुरु के लिए पुष्पराग, शुक्र के लिए हीरा, शनि के लिए नीलम, राहु के लिए गोमेद तथा केतु के लिए वैदूर्य (लहसुनिया) धारण करना चाहिये।इनके अतिरिक्त बुध की प्रसन्नता के लिए सोना भी धारण किया जाता है। यदि मूल्यवान रत्नों को धारण करने का सामर्थ्य न हो तो स्वल्प मूल्य वाले रत्नों को धारण करने के लिए ग्रहानुसार रत्न बतलाये गये हैं। राहु और केतु की प्रसन्नता के लिए लाजावर्त, शुक्र और चन्द्रमा के लिए चाँदी, गुरु के लिए मोती, शनि के लिए लोहा तथा मंगल और सूर्य के लिए मूंगा धारण किया जा सकता है।19

ग्रहों की शान्ति के लिए मन्त्र -

ग्रह	**तांत्रिक मन्त्र**	**बीज मन्त्र**
सूर्य -	ॐघृणिः सूर्याय नमः	ॐह्रीं हौं सूर्याय नमः
चन्द्र-	ॐ सौं सोमाय नम	ॐ ऐं क्लीं सोमाय नमः
मंगल -	ॐ अंअङ्गारकाय नमः	ॐहूँ श्रीं भौमाय नमः
बुध-	ॐ बुं बुधाय नमः	ॐऐं श्रीं श्रीं बुधाय नमः
गुरु -	ॐ बृं बृहस्पतये नमः	ॐ ह्लीं क्लीं हूँ बृहस्पतये नमः
शुक्र -	ॐशुं शुकाय नम	ॐह्रीं श्रीं शुकाय नमः
शनि -	ॐ शं शनैश्चराय नमः	ॐऐं ह्रीं श्रीं शनैश्चराय नमः
राहु -	ॐ रां राहवे नमः	ॐऐं ह्रीं राहवे नमः
केतु-	ॐकें केतवे नमः	ॐह्रीं ऐं केतवे नमः

उपर्युक्त प्रक्रिया के माध्यम से निश्चित तौर पर ग्रह जन्य दुष्प्रभावों को न्यून कर रोग आदि में न्यूनता या उनका शमन किया जा सकता है। अतः स्वास्थ्य विचार प्रक्रिया में ज्योतिष शास्त्र की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि ज्योतिषशास्त्र भारतीय विद्या का एक महत्वपूर्ण अंग है। विशेषकर इसलिए कि एक ओर तो आचार्यों ने इसे पराविद्या की कोटि में माना है और वहीं दूसरी ओर इसका प्रवेश सर्वसाधारण के जीवन में इस सीमा तक व्याप्त किया है कि शुभ घड़ी, लगन और मुहूर्त-शोधन दैनन्दिन जीवन के प्रमुख अंग बन गए हैं क्योंकि मानव जीवन के रहस्यों का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के द्वारा ही सम्भव है। ज्योतिषशास्त्र की यह विशेषता है कि मनुष्य के द्वारा किए गए जन्मजन्मान्तरों के शुभ-अशुभ कर्म के परिणामस्वरुप उसके जीवन में आने वाले सुख-दुख जय-पराजय उन्नत-अवनति लाभ-हानिया, यश-अपयश और भाग्योदय के समय के परिज्ञान से मनुष्य के लिए सरलता एवं समस्या का निवारण व मार्गदर्शन करता है।

ज्योतिषशास्त्र प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक दीपक की तरह कार्य करता है इस कारण प्रत्येक क्षेत्र में ज्योतिषशास्त्र की आवश्यकता है।अतः इस शास्त्र का उद्देश्य समाज के सभी प्रकार के कष्टों चाहे वह शारीरिक,मानसिक व आर्थिक कष्ट हो, सभी का समाधान करते हुए करते हुए जन सामान्य का उपकार करना है।20 ज्योतिषशास्त्र भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों के प्रत्यक्षीकरण में चक्षुरूपात्मक के रूप में माना जाता है।

जीवन में ज्योतिष शास्त्र के द्वारा पूर्वानुमान के माध्यम से किसी भी समस्या के दुष्प्रभाव को अवश्य कम किया जा सकता है क्योंकि यह परम सत्य है। कोई अप्रिय प्राकृतिक घटना होने वाली है जैसे भूकम्प, उत्पात, अतिवृष्टि आदि को रोकना संभव तो नहीं हो पता है। लेकिन यदि इनकी अवधि या काल का ज्ञान मानव को हो जाए तो उसके दुष्प्रभाव को कम अवश्य किया जा सकता है,जो कार्य केवल ज्योतिषशास्त्र के द्वारा ही सम्भव है।

International Journal of All Research Education and Scientific Methods (IJARESM),
ISSN: 2455-6211, Volume 13, Issue 5, May-2025, Available online at: www.ijaresm.com

सन्दर्भ सूची

1-यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभ तस्य कर्मणः पक्तिम् व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।। फलितमार्तण्ड

2-वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिषशास्त्रमकल्मषम्।
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्त्त कर्म न सिद्धयति।।
सिद्धान्त शिरोमणि-1-1/22

3- ग्रहगणितं ज्योतिषम्।

4- शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। उपनिषद् साहित्य।

5-समदोषाः समाग्निश्च समधातुमलक्रियाः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते ।
सुश्रुत संहिता, आयुर्वेद शास्त्र।

6- "कर्मजा व्यापयविदोषासन्ति वापरे।
चरकसंहिता उत्तरतन्त्र अध्याय 40

7- जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण ज्ञायते । प्रश्न मार्ग-13/26

8-शीर्षमुखबाहुहृदयोंदराणि कटिबस्तिगुह्यसंज्ञानि।
ऊरु जानू जड़्के चरणाविति राशयोऽजायाः।कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत्प्रसवकाले । सदसद्गृहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च ।।
लघुजातक राशिप्रभेदाध्याय श्लोक संख्या 4-5

9-तनुधन सहजसुद्वत्सुतरपुजायामृत्युधर्मकर्माख्या:।
व्यय इति लग्नाद्भावाश्वतुरास्राख्येऽष्टमवतुर्थे।
लघुजातक राशिप्रभेदाध्याय: ,श्लोकसंख्या 15

10-सन्ति प्रकार भेदाश्च रोगभेदनिरूपणे ।
ते चाप्यत्र विलिख्यन्ते यथा शास्त्रान्तरोदिताः ।।
रोगास्तु द्विविधा ज्ञेया निजागन्तुविभेदतः ।
निजाश्चागन्तुकाश्चापि प्रत्येक द्विविधाः पुनः ।।
निजा शरीरचित्तोत्था दृष्टादृष्टनिमित्तजाः ।
तथैवागन्तुकाश्चौवं व्याधयः स्युश्चतुर्विधाः ।।
प्रश्नमार्ग द्वादशोऽध्याय श्लोक संख्या 17-19

11- वातपित्तकफोद्भूताः पृथक्संसर्गजास्तथा ।
सन्निपातमवाश्चौते शारीराः कीर्तिता मदाः ।।
प्रश्नमार्ग द्वादशोऽध्याय श्लोक संख्या 20

12-अष्टमेन तदीशेन तद्दृष्ट्रा तद्गतेन वा।
विज्ञातव्याः स्युरेतेषां वीर्यतस्तत्कृता गदाः ।।
प्रश्नमार्ग द्वादशोऽध्याय श्लोक संख्या 21

13- क्रोधसाध्वसशोकादिवेगजातास्तु मानसाः ।
ज्ञेया रन्धमनोनाथमिथो योगेक्षणादिभिः ।।
प्रश्नमार्ग द्वादशोऽध्याय श्लोक संख्या 22
14- शापाभिचारघातादिजाता दृष्टनिमित्तजाः ।
ज्ञेयाः षष्ठतदीशाम्यां तद्दृष्ट्रा तद्ङ्गतेन वा ।।
प्रश्नमार्ग द्वादशोज्याय श्लोक संख्या 23
15-रन्ध्रेशषष्ठसम्बन्धे शापाद्याः प्रबलाश्च ते ।
अदृष्टहेतुजा ज्ञेया बाधकग्रहसम्भवाः ।।
प्रश्नमार्ग द्वादशोऽध्याय श्लोक संख्या 24
16-जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।तच्छान्तिरौषधैदनिर्जपहोमार्चनादिभिः ।।
प्रश्नमार्ग त्रयोदशोऽध्याय श्लोक संख्या 29
17-औषधं पथ्यमाहारं तैलाभ्यङ्ग प्रतिश्रयम् ।
रोविश्यः श्रद्धया दद्याद्रोगी रोगनिवृत्तये ।।
प्रश्नमार्ग त्रयोदशोऽध्याय श्लोक संख्या 35
18-मृत्युञ्जयहवनं खलु सर्वरुजां शान्तये विधेयं स्यात् । सर्वेष्वपि होमेषु ब्राहाणमुक्तिस्तथा तथाप्तवचः ।।
तीव्रज्वराभिचारादिशान्तिदं हवनं मतम् । मृत्युञ्जयाख्यमन्त्रेणनैव केवलमायुषम् ।।
तीव्रज्वरे तीव्रतराभिचारे सोन्मादके दाहगदे च मोहे ।
तनोति शान्तिं न चिरेण होमः सञ्जीवनश्चाष्टसहस्रसंख्यः ।।
प्रश्नमार्ग त्रयोदशोऽध्याय श्लोक संख्या 36-38
19- माणिक्यमुक्ताफलविदुमाणि गारुत्मकं पुष्पकवत्जनीलम्।गोमेदवैदूर्यकमर्कतः स्यू रत्नान्यथो झस्य मुदे सुवर्णम् ।
धार्य लाजावर्तक राहुकेत्वो रौप्य शुक्रन्द्रोश्च मुक्ता गुरोस्तु।
लोह मन्दस्यार-मान्चोः प्रवालं............................11
मुहूर्तचिन्तामणि- गोचरराप्रकरण- श्लोक संख्या-10-11
20- "दुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्।व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इवः ।।"
वृहत्संहिता 2/1
21- अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम् ।
प्रत्यक्ष ज्योतिष शास्त्रं चन्द्रार्क यत्र साक्षिणौ ।। मुहूर्त मार्तण्ड 2/9